Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का एक साहित्यिक अध्ययन

प्रहलाद सिंह (शोध छात्र)

डा0 धनेश कुमार मीना (शोध निर्देशक)

विषय हिन्दी कला विभाग, फैकल्टी ऑफ मानविकी मंगलायतन विश्वविद्यालय, बेसवां, अलीगढ़

सारांश, कथा–सृजन में मूल तत्व कथानक हैं मनोवैज्ञानिक कथा–लेखन के समय यह भरपूर कोशिश की गई कि मनोविश्लेषण की प्रधानता के कारण कथातत्व को उपन्यास–सृजन से लगभग अलग कर दिया जाये। क्रम तोड़ा भी खूब गया। जैनेन्द्र ने शुरूआत की और अज्ञेय ने उसे विकास के शिखर तक पहुँचाया। लेकिन 'सुनीता' की यह घोषणा कि कथाक्रम को पकड़ने के लिए संभवतया पाठकों को छलांग भी लगाना पड़े लगभग निरर्थक प्रमाणित हुयी। 'शेखर एक जीवनी' में व्यावहारिक आयाम देते हुए इस सिद्धान्त को सफलता का कलात्मक जामा पहनाया गया लेकिन तमाम कलात्मक कौशल के बावजूद कथानक तत्व गौण नहीं हो पाया। अतिक्रान्तिकारिता के दौर में समाजवादी यथार्थवादी तथा आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारें ने भी कथानक की जगह चरित्र को प्रधासनता देकर कथानक को गौण करना चाहा, लेकिन वहां भी वही 'ढाक के तीन पात'। समकालीन कथा–लेखन में मृदुला गर्ग, रमेश साक्षी आदि ने विचार को केन्द्रीयता देकर कथानक के महत्व को एक बार फिर तोड़ना चाहा लेकिन न कहानी का कहानीपन गया और न उपन्यास का कथानक। उपन्यास वस्तुतः युग की महागाथा है। चरित्र, विचार आदि सहायक उपादान हैं। कथानक केन्द्र में चाहे विचार रखा जाये या चरित्र, मनोवेग को ही क्यों न रखा जाये, लेकिन केन्द्रीयता तो कथानक को ही मिलती है। आशय यह कि कथा साहित्य के सृजन में कहानी का, यानी कथानक तत्व का सर्वाधिक महत्व है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

मुख्य शब्द, 'ढाक के तीन पात', गौण करना चाहा, जनवादी दृष्टि आदि।

प्रस्तावना, हिन्दी कथा–साहित्य और विशेषकर उपन्यास के विकास में 'गोदान' के प्रकाशन के बाद एक नये 'प्रयोग युग' की शुरूआत हुयी जिसमें कथानक प्रधान तो रहा ही; चरित्र, विचार और मनःतत्व इन

सबको सहभागिता दी गयी। महागाधा चाहे युग की रही हो या काल की या फिर किसी व्यक्ति विशेष की, आंदोलन की भी रही हो, फिर भी केन्द्र में कथानक की स्थिति को इनकार करने के लिए कोई भूमिका छोड़ी नहीं गयी। इसी परम्परा की नींव पर उन कुछ लेखकों ने अपने कथा–साहित्य का सृजन किया जिनमें मुख्य प्रधानता जनवादी दृष्टि की रही। यह बात यहाँ स्पष्ट हो चानी चाहिए कि 'जनवाद' के 'जन' का जन्म जहाँ पात्रों की भूमिका में अन्तर्निहित है वहीं 'वाद' विचारों की पृष्ठभूमिक में भी। इन दोनों ही पृष्ठभूमियों के सहारे जो आकार खड़ा किया जाता है उसी का नाम कथानक हैं आशय यह एक जनवादी दृष्टि से सम्पन्न कथा लेखकों में इन तीनों ही तत्वों की जो महत्तम सहभागी भूमिका है उसका उदाहरण अन्य धारा के लेखकों में नहीं मिलता। जनवादी दृष्टि का उपन्यास–लेखक कथानक के निर्माण में दो प्रमुख उपादानों का सहयोग लेता है, (1) राजनीति और (2) समाज या संस्कृति। कथानक के निर्माण में इन्हीं दोनों से वह प्रेरणा लेता है, उसका विकास करता है और अन्ततः समाज तथा राजनीति में जनवाद के आधारभूत तत्वों को सुदृढ़ करने में यह रचनात्मक सहयोग करता हैं यह आवश्यक नहीं कि वह लेखक किसी विचारधारा में पूर्णतः दीक्षित ही हो, उसके लिए अनिवार्यतः पहली शर्त है कि वह यथार्थवादी सोच का हो। जीवन, जगत, काल, देश और उसमें व्याप्त सामाजिक तथा राजनीतिक परिदृश्यों की वास्तविक जटिलताओं को देखने–परखने का उसमें 'विजय' हो। नागार्जुन ठीक इसी कसोटी पर खरे उतरने वाले जनवादी कथा–तर्क हैं। इसीलिए उनके उपन्यास की लेखन–यात्रा में उनके द्वारा सभी उपन्यासों में जिन कथानकों की सृष्टि की गयी है उनमें व्याप्त समाज संस्कृति और राजनीति का विश्लेषण ही हमारे अध्ययन का आधार है।'रीतिनाथ की चाची' नागार्जुन का प्रथम उपन्यास हैं जिसका कथानक 1948 के आास–पास मैथिल समाज की उन सामंती रूढ़ियों पर आधारित है, जो आजादी के बाद के समाज में आज भी मौजूद देखी जा सकती हैं। कथानक की प्रमुख विशेषताओं में से सामाजिक और राजनीतिक, दो ऐसे केन्द्र बिन्दु हैं जिनके सन्दर्भ में रतिनाथ की चाची का कथानक सृजित हुआ है। 'रतिनाथ की चाची' अर्थात् उपन्यास की नायिका 'गौरी' के वैधव्य जीवन की करूण गाथा प्रस्तुत करते हुए नागार्जुन ने इस उपन्यास के कथानक का विकास किया है। बीच–बीच में कुछ अन्य घटनाओं का भी उल्लेख हुआ है जो गौरी के जीवन से जुड़ी घटनाओं से ही सम्बन्ध रखती है। इन घटनाओं में जयनाथ का स्वच्छन्द विचरण, रतिनाथ का छात्र–जीवन, उमानाथ का नगरीय जीवन, गौरी की माक्र का साहसपूर्ण जीवन, दम्मो फूफी की ज्ञानगोष्ठी, रत्ती–बानों का प्रणय जैसी घटनाओं द्वारा लेखक ने भारतीय समाज में फैली रूढ़ियों, कुसंत्कारों, विधवाओं की नारकीय स्थिति, पुरूष वर्ग की स्वच्छन्दता, विभिन्न जातियों के आपसी संबंध, बहुविवाह–प्रथा, हिन्दू समाज की कट्टरता, पारिवारिक बदलते रिश्तों की छवि उजागर की हैं स्वाधीनता आंदोलन के दौर

में लोगों की यह आशा–आकांक्षा थी कि इन रूढ़ियों से मुक्त समाज की रचना होगी। एक वैज्ञानिक समाज–निर्माण की भूमिका बनेगी। किन्तु हुआ ठीक इसका उल्टा। स्वाधीन भारत ने इन्हीं रूढ़ियों, अंधविश्वासों आदि को अपनी नियति मानकर इन्हें भरपूर विकास दिया। कथानक निर्माण में नागार्जुन के व्यंग्य का यही रहस्य है। कथानक के सन्दर्भ में एक बात यह भी कही जाती है कि इस उपन्यास की कथा नागार्जुन के व्यक्तिगत जीवन की कथा हैं जिसमें 'रतिनाथ' स्वयं नागार्जुन हैं, 'गौरी' उनकी चाची है तथा 'जयनाथ' नागार्जुन के पिता। प्रकाश चन्द्र भट्ट ने लिखा है कि ''वस्तुतः उपन्यास के कथानक का आधार लेखक के जीवन की सत्य घटना है। 'आइने के सामने' निबन्ध में दिए गए इण्टरव्यू को पढ़कर सहज ही इस बात का ज्ञान हो जाता है। नागार्जुन के पिता बड़े उग्र स्वभाव के थे। ''बालक नागार्जुन ने अपने पिता की माँ की छाती पर चढ़ गर्दन रेतता हुआ देखा था, इधर रतिनाथ ने जयनाथ को ऐसा ही करते देखा।'' कथानक में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है। ''रतिनाथ की बीमार माक्र बिस्तरें पर उतान लेटी पड़ी है और जयनाथ रूद्ररूप धरकर बेचारी की छाती पर बैठा है। हाथ में कुल्हाड़ी है और वह अपनी स्त्री की गर्दन रेतता जा रहा हैं वह धिधिया रही है लेकिन कोई भी इस नरमेघ में हस्तक्षेप करने वाला वहाँ मौजूद नहीं हैकृमाँ धिध्यिाती है, साढ़े तीन साल के अबोध स्त्री ने यह दृश्य देखकर दम साध लिया हैकृमाँ की स्मृति के साथ ही यह भयानक चित्र रत्ती की आँखों के आगे आ जाता है। पिता के रूद्र स्वभाव के प्रति इस बालक के हृदय में प्रतिहिंसा की आग कभी कभी सुलग उठती है।'' यहाँ 'रोमान' की जगह 'यथार्थ' की पीठिका ही प्रमुख होती है। और यथार्थ ही स्थिति वाह्य यथार्थ के साथ–साथ अन्तः यथार्थ में ही होती है। या यों कहें दोनों अनस्यूत होते हैं। यह कि रचनाकार का जीवन प्रत्यक्षतः उस रचना विशेष में मौजूद हो या नहीं, उसके अनुभव–संसार का यह अंग तो है ही। अतः नागार्जुन के सन्दर्भ में भी यहां इसी आशय सन्दर्भ को स्वीकारा जाना चाहिए। नागार्जुन के स्वयं का जीवन खंड हो या कथानायक का पाठकीय संवेदना का यह संदर्भ नहीं है। सामाजिक सांस्कृतिक वास्तविकता का यह एक विदूशण है जिसे लेखक उजागर कर उसके प्रति घृणा और विद्रोह उत्पन्न करना चाहता है। अगर यह लेखकीय आकांक्षा सम्प्रेषित हो जाती है तो पाठकीय संवेदना में रचनात्मक उद्देश्य अपना स्थाप प्राप्त कर लेखक के रचनात्मक उद्देश्य को सफल बना देता है।

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

डोगरा, ऊषा (1984) 'आंचलिक उपन्यासों का लोकतांत्रिक विमर्श' – हिन्दुस्तान के पूर सोच को या यों कहें कि दर्शन को अगर ईमानदारी से परखें तो जगतगुरू को छोड़कर हमारे पास या तो कश्मीरी चिन्तर की परम्परा है या मैथिल चिन्तन की। आत्कि तथा नास्तिक चिन्तर की दोनों श्रेष्ठ परम्पराएँ जगदर्शन परम्परा में न्याय वैश्विक और सांख्या जैसी परम्परा तो मिथिला में विकसित हुयी थी, नास्तिम दर्शन में बौद्ध और जैन परम्परा के विकास का श्रेय भी इसी प्रदेश को हैं निष्कर्ष यह कि विचारधारा के स्तर पर बिहार विशेषकार उत्तर बिहार का अपना एक महत्व है।

गुप्ता, कमल (1979) 'हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद' – साहित्य में विचारधारा और विचार संवेदन बनकर ही प्रकट होता है इसीलिए चाहे संवेदनात्मक ज्ञान कहिए या ज्ञानात्मक संवेदन, रचनात्मक विवेक के रूप में ही साहित्य में यह आकर ग्रहण करती हैं यानी विचारधाराएँ या विचारसारणियाँ अपने विविध रूपों के साथ साहित्य में प्रच्छन्न रूप में विद्यमान रहती हैं इसलिए उनका अन्वेषण भी उपेक्षाकृत भ्रमताध्य होता है। साहित्य में विचारधारा पर विचार करते हुए अमृतराय ने विचार और धारा को हिन्दी में संस्कृत का रूपान्तरण माना है जबकि विचारधारा को आइडियोलॉजी का रूपान्तर।

शोध के उद्देश्य, इस शोध पत्र को पूरा करने के लिये मेरे द्वारा निम्न शोध उद्देश्य तैयार किये गयें है।

1. नागार्जुन के काव्य में जनवादी दृष्टि को ज्ञात किया गया
2. नागार्जुन के काव्य सें जुडें अन्य कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया गया

शोध के प्र   न, इस शोध पत्र को पूरा करने के लिये मेरे द्वारा निम्नलिखित शून्य शोध परिकल्पनाओं का सहारा लिया गया है।

1. नागार्जुन के काव्य में जनवादी दृष्टि और यथार्थ का अध्ययन किया गया है।
2. नागार्जुन के काव्य में जनवादी दृष्टि और प्रमुख आयामों का अध्ययन किया गया है।

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
January 2025
ISSN 2229-3388

शोध विधि

अधिकतर साहित्यकारों के आधार पर हिन्दी साहित्य में आंकड़े उलझे ही होते हैं जैसे हिन्दी कथा जनवादी परम्परा में नागार्जुन के उपन्यासों का एक साहित्यक अध्ययन के समकालीन समय को शोधार्थी ने देखा तो नहीं है इसीलिये वह पूरी तरह से उसी साहित्य और कविताओं पर निर्भर है जो नागार्जुन के उपन्यासों समकालीन समय में साहित्यकारों ने लिखा है। इस साहित्य में नागार्जुन के उपन्यासों की सच्चाई भी हो सकती जो ऐसे कई हिन्दी साहित्य पुरातात्विक और अब तक अज्ञात अनेक कवियों की कविताऐं भी मिल सकती हैं जिनके गहन अध्ययन और विचार विमर्श के बाद जो सत्यता प्रकट होगी उसी को मैं इस शोध पत्र में यथास्थान वर्णित किया गया है। इसीलिए इस शोध पत्र मे शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

विशय का महत्व कथानक आगे बढ़ता हैं गौरी (चाची) को इस मुसीबत से मुक्ति पाने की एक उम्मीद दिखाई पड़ती है और उसे याद आती है अपनी माँ। ''मुसीबत की उस घड़ी में एकाएक चाची को अपनी माँ याद आयी उसने तय किया कि आज तो नहीं, कल रातोंरात वह तरकूलवा चली जाएगी। वहाँ गाँव में ही, कई पमाइमें हैं। डॉट, फटकार, गंजन–फजीहत के बावजूद भी माँ आखिर माँ ही होगी। लड़की का कवच बनकर तमाम मुसीबतों को वह अपने ऊपर से लेगी, इसमें भी क्या कुछ शंक हैं?'' नागार्जुन ने उपन्यास के कथानक द्वारा उस सामाजिक दण्ड की ओर इशारा भ्झी किया है जो आज भी हमारे आजाद भारत के, चाहे गांव हों या शहर अपराधी को किसी न किसी रूप में मिलता ही हैं कुछ ऐसा सामाजिक बहिष्कार का दण्ड गौरी को मिलता है जब ''दमयन्तन का अनुशासन उसके खिलाफ शुरू हो गया... अब इस आंगन में न धोबिन आएगी, न नाइन, न डोमिन न चमाइन। ब्राहमणी की तो भला बात कौन कहे।'' औरों से तो उसे डर लगता ही है स्वयं अपने बेटे के बारे में वह सोचती है कि ''उमानाथ जब सुनेगा कि उसकी विधवा माँ गर्भवती हो गयी है तो। कथानक के आगे की घटना में गौरी के गर्भ गिराये जाने का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार ने दिखाया है कि किस तरह गर्भ गिराने में चतुर बुधना पमार की औरत मौके का फायदा उठाकर मुँहमांगी रकम बसूल करना चाहती है, परन्तु दूसरी और उसकी मानवीय संवेदना भी प्रकट हुयी है अैर वह गौरी की माँ से साफ कहतल है ''एक बात कहती हूँ, माफ करना, बड़ी जात वालों की तुम्हारी यह विरादरी बड़ी मलिच्छ, बड़ी मिठुर होती है मालिकाइन। हमारी भी बहु–बेटियाँ रॉड़ हो जाती है, पर हमारी विरादरी में किसी के पेट से आठ–आठ, नौ–नौ महीने का बच्च निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है। ओह, कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का।'' 'मोह के वास्तविक चित्रण में भी रचनात्मक उद्देश्य 'बदलाव' में ही अंतःनिहित होता है। रचनात्मक उद्देश्य का प्रश्न लेखकीय

'सहानुभूति' से जुड़ा होता हैं वह किस वर्ग की किस स्थिति से साहनुभूति रखता है। 'मोह' से या 'मोहभंग' से? रचनात्मक मूल्य इसी सहानुभूति के विश्लेषण से निर्धारित होता हैं निश्चय ही नागार्जुन का कथाकार अपनी 'सहानुभूति' में 'मोहभंग' का रचयिता है। उसकी रचना में 'मोह' चित्रण की कुरूपताओं या विदूषताओं के प्रति धुआ और आक्रोश उत्पन्न करने के लिए ही हुआ है। जनवादी रचना दृष्टि की इस अनिवार्य शर्त को नागार्जुन का कथाकार हमेशा निभाता नजर आता है। कथानक के विकास के अगले क्रम में रतिनाथ का अपने पिता के प्रति व्यवहार, का उल्लेख करते हुए लेखक ने बताया है कि ''पिता के प्रति उसकी भक्ति या श्रद्धा बिल्कुल दिखावटी थी। ह्रदय से वह चाची को ही आप और माँ समझता था।''मैथिल समाज की विवाह प्रथा का जिक्र करते हुए लेखक ने भारतीय समाज में आज भी फैली उन विदूषताओं की ओर इशारा किया है जहां वर की खोज में अभिजात कुल की और आज भी ध्यान दिया जाता है, भले ही वह पारित्रिक रूप से भ्रष्ट तथा दरिद्र क्यों न हो, मिथिला का ब्राहमण जो जितना ही कुलीन होता है उसकी दरिद्रता भी उसकी ही बड़ी हुआ करती है। इन्द्रमणि को भी अपनी तीन कन्याओं का भरण–पोषण आरम करना पड़ा, क्योंकि चार में से तीन दामाद परम अभिजात्य और महादरिद्र थे। नागार्जुन समाज के उन स्वार्थी ठेकेदारों का चरित्र स्पष्ट करते हैं जो आर्धोपार्जन के लाभ से आज भी वर पक्ष का रजिस्टर अपने साथ रखते हैं और असमय ही भाँति–भाँति कन्याओं का अनमेल विवाह कराके उन्हें विधवा का नारकीय जीवन भोगने के लिए छोड़ देते हैं। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास के मोसा पंडित ऐसे ठेकेदार हैं जिनकी कृपा से कितने ही लंगड़े, अंधे, अपाहित और बूढ़े ..अंधखिली कलियों जैसी बालिकाओं को गृह लक्ष्मी के रूप में पाकर निहाल हो गए। एक–एक व्याह के पचास–पचास हजार रूपये पंडित के बंधे हुए थे। नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' के कथानक में एक और सामाजिक अन्तर्विरोध को उजागर किया है तो दूसरी ओर राजनीतिक भ्रष्टाचार को भी। उपन्यास के सोलहवें अध्याय में लेखक ने जमींदार–किसान संघर्ष तथा नेताओं की अवसरवादिता के माध्यम से इस भ्रष्टाचार को स्पष्ट किया हैं आगे भी छिटपुट उल्लेख राजनीतिक भ्रष्टाचार के सन्दर्भ में हैं जो कहीं–कहीं दृष्टिगोचर होते हैं। कुल मिलाकर राजनीतिक दृष्टि से कथानक उतना महत्वपूर्ण नहीं बन पाया है जितना सामाजिक दृष्टि से। परतन्त्र भारत में साम्राज्यवाद, पूंजीपति तथा जमींदारी के त्रिकोणात्मक संघर्ष से सभी परिचित हैं, परन्तु स्वतंत्र भारत में आज भी पूंजीपति वर्ग तथा जमींदार वर्ग के शोषण को कोई नकार नहीं सकता। स्वतंत्रता के बाद कृषि क्षेत्र में एक ओर जमींदारों तथा उनके कर्मचारियों का वर्चस्व देखा गया तो दूसरी ओर किसान–मजदूर का अपनी जमीन के शोषण के खिलाफ संघर्ष।

निश्कर्श, स्वतंत्र भारत में सरकार तथा उसमें भ्रष्ट प्रशासन की जो छवि आज उभरकर सामने आ रही हैं उसमें जनता के लिए कोई स्थान नहीं है। कथानक में सरकार तथा भ्रष्ट प्रशासन की यही छवि उस समय दिखाई पड़ती है जब शुभंकरपुर में पैसे मलेरिया से जनसाधारण को विनाश से बचाने के लिए ताराचरण जैसा नौजवान सरकार से मदद की सोचता है, ''ताराचरण ने बड़ी कोशिश की थी कि जिले और थाने के कांग्रेसी अधिकारियों से इस मामले में कुछ करवाये, मगर अभी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की तुलना में नेताओं के लिए इन बातों का क्या महत्व था? यह वे दिन थे जबकि हिटलर आधा से अधिक यूरोप जीत चुका था और गांधी जी कोई नया कदम उठाना चाहते थे। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से सरकार–जमींदार गठबन्धन तथा तत्कालीन प्रशासन का भ्रष्टाचार एवं इनके विरूद्ध किसानों का संघर्ष, जैसा मुद्दा रतिनाथ की चाची के कथानक में लेखक ने उठाया हैं इसका स्पष्ट प्रमाण डा. एम. रवीन्द्रनाथ का यह कथन है जिसमें उन्होंने बताया है कि 'रतिनाथ की चाची– का वर्ण्य–विषय भिन्न होते हुए भी विशिष्ट उ्द्देश्य से प्रेरित है। नागार्जुन ने इसमें सन् 1937–39 ई. के लगभग बिहार प्रांत में किसानों का जो सशक्त आन्दोलन चला था, उसका चित्रण किया है। उनका उद्देश्य किसानों को यह दिखा देना है कि संघर्ष में उनका सहयोग कौन करेगा और कौन कौन प्रतिक्रियावादी शक्तियों का समर्थन करते हुए विपक्ष में खड़े होंगे। इसलिए नागार्जुन ने जयदेव जैसे समाज के कोढ़ियों तथा जिला किसान सभा के प्रमुख नेता की लालवी मनोवृत्ति एवं अवसरवादिता को दिखाकर उन्हें किसान संघर्ष के हत्यारों के रूप में चित्रित किया अैर किसानों को ऐसे नेताओं के प्रति जागरूक रहने का आह्वान किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची,

1 रतिनाथ की चाची, पृ0 148

2 डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट : नागार्जुन :जीवन और साहित्य, पृ0 167

3 रतिनाथ की चाची, पृ0 129

4 डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट : नागार्जुन :जीवन और साहित्य, पृ0 167

5 डॉ0 विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, पृ0 116